धूमिल के काव्य में यथार्थ एवं व्यंग्य

मोनिका शर्मा
महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर
Email: shivamonika1991@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत पत्र साठोत्तरी कवि धूमिल की कविताओं की विवेचना है। उनकी कविताएँ स्वतंत्रता के पश्चात् बनी सामाजिक परिस्थितियों पर कटाक्ष थीं, जिसमें धूमिल ने व्यंगात्मक दृष्टिकोण से परिस्थितियों का आंकलन प्रस्तुत किया था।

प्रमुख शब्दः स्वतंत्रता, कटाक्ष, व्यंग्य, साठोत्तरी काव्य।

यथार्थ का शाब्दिक अर्थ है जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना। यथार्थवादी दृष्टिकोण दर्शन, मनोविज्ञान, साहित्य और कला के क्षेत्र में काल्पनिक की अपेक्षा वर्तमान को, आदर्श के स्थान पर यथार्थ को ग्रहण करता है। साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद का अर्थ है "साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तनदृपद्धति, जिसके अनुसार कलाकार अपनी कृति में जीवन के यर्थाथ रूप का अंकन करता हैं" (वर्मा, 2015)।

व्यंग्य की व्युत्पत्ति वि+अंग–व्यंग्य मानी जाती है। जिसका शाब्दिक अर्थ है – " शब्द की व्यंजना शक्ति द्वारा निकला अर्थ "(बाहरी, 1994)। व्यंग्य के मूल में वह शब्द शक्ति है, जिसमें प्रस्तुत शब्दों का अर्थ उनके लोक प्रसिद्ध अर्थ से भिन्न, किंतु प्रभाव की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होता है। व्यंग्य मूलतः आक्रामक होता है किन्तु इसका हेतु पीड़ा नहीं वरन पीड़ा का प्रतिकार है। व्यंग्य मानव जीवन के रक्षक की भूमिका में होता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ मानव जीवन के विकास में बड़ी बाधा हैं। सभी बाधाएँ दूर हों और मानव जीवन में संतुलन आए, युगों से ऐसी आवश्यकता सभी संवेदनशील कवियों को अनुभव होती रही है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों एवं वैषम्य को स्वीकार नहीं करके, मानव जीवन जब इसके लिए संघर्ष करता है तो यही अभिव्यक्ति के क्षेत्र में व्यंग्य रूप में व्यक्त होता है।

धूमिल साठोत्तरी काव्य के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। साठोत्तरी काव्य सन् साठ के बाद की कविताओं के लिए प्रचलित नाम है। यह वह दौर था, जब देश की परिस्थितियों से जनता का मोह भंग हो चुका था। जनसामान्य के लिए आज़ादी का कोई अर्थ नहीं रह गया था। उन्हें स्पष्ट लगने लगा था कि यह आज़ादी सिर्फ धन कुबेरों के लिए है। सामान्य जनता को सपने देखने व उम्मीदें सजाने का कोई हक़ नहीं था। इसी पीड़ा को अनुभूत करते हुए जनसामान्य के बीच से ही अनेक कवि प्रकाश में आए। जो अपनी पीड़ा और आक्रोश का चित्रण व्यंग्य के माध्यम से कर रहे थे।

धूमिल के काव्य में यथार्थ एवं व्यंग्य की विवृत्ति युगीन चेतना को आत्मसात करती हुई अभिव्यक्त हुई है। "धूमिल का उदय धूमकेतु की तरह होता है जिसमें अग्नि भी है, धुआँ भी। धुआँ आधुनिकता है और अग्नि प्रगतिशील चेतना "(सिंह, 2016)। धूमिल की रचनाएँ युगव्यापी वैषम्य का यथार्थ चित्रण करती हैं, जो

व्यथा प्रसंगों की बोलती तस्वीरें हैं। एक कविता 'बीस साल बाद' में वह कहते हैं कि "क्या आज़ादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है जिन्हें एक पहिया ढोता है या इसका कोई ख़ास मतलब होता है" (धूमिल, 2014)। धूमिल देख रहे थे अपने समय की परिस्थितियों को समझ रहे थे उस पीड़ा को, जो वे स्वयं भोग रहे थे। जहाँ हम 1947 में थे, बीस साल बाद भी वहीं खड़े थे। समस्याएँ जस की तस थी। भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त तो कर ली, लेकिन आज़ादी का सही अर्थ सामान्य जनता तक नहीं पहुँचा था।

'भाषा की रात' कविता में धूमिल स्पष्ट लिखते हैं कि भारत में त्रिभाषा फॉर्मूला लागू करना, महज़ एक चाल है जिससे जनता को आपस में लड़ाया जा सके। उनका ध्यान रोटी जैसी मूलभूत आवश्यकता से हटाया जा सके। कवि ये भी कहता है कि भाषा को ठीक करने से पहले आदमी को ठीक करने की आवश्यकता है। "चन्द चालाक लोगों ने (जिनकी नरभक्षी जीभ ने पसीने का स्वाद चख लिया है) बहस के लिए भूख की जगह भाषा को रख दिया "(धूमिल, 2014)।

धूमिल द्वारा अभिव्यंजित यथार्थ कहीं भी अमूर्त नहीं है। उसमें जीवन के कष्टों, आडंबरों और अनीतियों का यथार्थ चित्रण है। यथार्थ की भावभूमि पर रचित कविता 'पटकथा' मानव की अन्तश्चेतना को झकझोरती है। "मैंने कहा आज़ादी...मुझे अच्छी तरह याद है – मैंने यही कहा था मेरी नस–नस में बिजली दौड़ रही थी उत्साह में खुद मेरा स्वर मुझे अजनबी लग रहा था मैंने कहाकृ–आ–जा–दी" (धूमिल, 2014)। आज़ादी महज़ एक शब्द न होकर जनता की उम्मीदें थी। मगर ये उम्मीदें, ये सपने टूटते हैं, बिखरते हैं और मोहभंग का दौर शुरू होता है।

कवि इंतज़ार करता है स्वतंत्र भारत में अब कोई भूखा नहीं रहेगा। अब किसी ग़रीब के घर छत नहीं टपकेगी। अब सदियों की गुलामी झेल चुके भारत की जमीन और आसमान अपना है, लेकिन स्थिति इससे उलट होती है, जनता हमेशा खाए जाने की भूमिका में ही रहती है। और कवि का इंतज़ार कभी ख़त्म ही नहीं होता। "मैंने इंतजार किया – अब कोई बच्चा भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा अब कोई छत बारिश में नहीं टपकेगी। अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा अब कोई दवा के अभाव में घुट–घुटकर नहीं मरेगा अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा अब कोई किसी को नंगा नहीं करेगा अब यह जमीन अपनी है आसमान अपना है जैसा पहले हुआ करता था – सूर्य, हमारा सपना है मैं इन्तजार करता रहा... इन्तजार करता रहा... इन्तजार करता रहा... "(धूमिल, 2014)।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी जीवन दृष्टि होती है, जो उसे दूसरे व्यक्ति से भिन्न करती है। जीवन के प्रति ये दृष्टि उसे देखकर या भोगकर प्राप्त होती है। धूमिल ने जीवन की विभीषिकाओं को खुली आँखों से देखा व ह्रदय से अनुभव किया। किशोरावस्था में धूमिल ने मज़दूरों के साथ लोहा ढोने का कार्य किया था। यहीं इनका सम्पर्क मज़दूरों से हुआ और इन्होंने अनुभव किया कि मेहनतकश जनता और पूँजीपतियों के बीच कितनी दूरी है। जनता को भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता। 'पटकथा'में धूमिल उस स्थिति का चित्रण भी करते हैं जिसमें गोदामों में अन्न सड़ता रहता है और इधर दाने दाने के अभाव में व्यक्ति दम तोड़ रहे हैं। "वहाँ बंजर मैदान कंकालों की नुमाइश कर रहे थे गोदाम अनाज से भरे पड़े थे और लोग भूखों मर रहे थे" (धूमिल, 2014)।

धूमिल दिखावे की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हैं। तथा कहते हैं कि जिस प्रकार ईश्वर सृष्टि का निर्माण करता है उसी तरह मोची भी जूते का निर्माण करता है। आदमी चाहे कितना भी बड़ा हो जाए पर जूते की

नाप से बाहर नहीं हैं। "बाबूजी सच कहूँ – मेरी निगाह में न कोई छोटा है न कोई बड़ा है मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है "(धूमिल, 2014)।

धूमिल शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं तथा दुःखी व दरिद्र जनता के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं। उन्होंने साहित्य को जीवन का दर्पण बनाया तथा वास्तविक जीवन का अंकन करते हुए क्रांति की गुहार लगा दी। 'नक्सलबाड़ी'कविता में धूमिल ऐसे जनतंत्र की बात करते हैं जहाँ सिर्फ उम्मीदें या सपने ना हों। जनता की मूलभूत आवश्यकता रोटी, कपड़ा, मकान की पूर्ति हो। इसलिए वे वैचारिक स्तर पर नक्सलबाड़ी आंदोलन का पक्ष लेते हैं और कहते हैं कि ऐसे आंदोलन से ही जनता को उसका हक़ मिलेगा।

धूमिल व्यवस्था और सत्ता के विरूद्ध भी निर्भीकता से बोलते हैं। वे कहते हैं कि राजनेताओं की कथनी और करनी में विसंगति है। वे इतने अधिक पतित व भ्रष्ट हो गए हैं कि उनकी दृष्टि में संसद जैसे सम्माननीय स्थान का भी कोई महत्त्व नहीं है। संसद को धूमिल इन शब्दों व्यक्त करते हैं – "अपने यहाँ संसद – तेली की वह घानी है जिसमें आधा तेल है और आधा पानी है "(धूमिल, 2014)।

पूँजीपति वर्ग नेताओं और अफ़सरों का संरक्षण प्राप्त कर शोषण करता है। और इन सब के कुचक्र में देश का मामूली आदमी पिसता रहता है। नीतियाँ भी वही फलिभूत होती हैं जो पूँजीपतियों के हितों का पोषण करें। धूमिल कहते हैं कि चेहरे बदल जाते हैं मगर कुर्सी वही रहती है इसलिए अब उन्हें चुनाव व्यवस्था में भी यकीन नहीं है। "मगर आपस में नफ़रत करते हुए वे लोग इस बात पर सहमत हैं कि 'चुनाव'ही सही इलाज है क्योंकि बुरे और बुरे के बीच से किसी हद तक कम से कम बुरे को 'चुनते हुए न उन्हें मलाल है न भय है न लाज है "(धूमिल, 2014)।

आज़ादी के बाद भारतीय जनतंत्र से बुद्धिजीवियों ने जो आशाएँ लगा रखी थी, वे पूरी नहीं हुई। देश के जननायक कुर्सी की जोड़–तोड़ में डूबे रहे। फ़ाइलों में योजनाएँ बनती रही, भाषण होते रहे। सदियों की गुलामी के बाद आज़ादी तो मिली, मगर मानसिक मुक्ति नहीं मिली। कवि अनुभव करता है कि अब भी वही अंधकार है और देश पहले की तरह, आज भी मेरा कारागार है "मेरे सामने वही चिर परिचित अंधकार है संशय की अनिश्चय ग्रस्त ठंडी मुद्राएँ हैं हर तरफ शब्दवेधी सन्नाटा है। दरिद्र की व्यथा की तरह उचाट और कूँथता हुआ। घृणा में डूबा हुआ सारा का सारा देश पहले की ही तरह आज भी मेरा कारागार है" (धूमिल, 2014)।

धूमिल न केवल राजनीति पर व्यंग्य करते हैं, अपितु धार्मिक क्षेत्र को भी अपना निशाना बनाते हैं। धर्म के नाम पर चल रहे बड़े–बड़े मठों के खोखले अस्तित्व का भी चित्रण करते हैं। वे मठ जो कभी शान्ति का प्रतीक थे, आज बारूद का गोदाम बन गए हैं। "मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का सबसे बड़ा बौद्धद्द मठ बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है" (धूमिल, 2014)। धूमिल के काव्य में यथार्थ की विभिन्न भंगिमाएँ मूर्त हुई हैं। इनके व्यंग्य में वैषम्य के प्रति प्रहार है। राजनीतिक, आर्थिक विषमताओं और शोषण के प्रति कवि का ह्रदय आक्रोश से भरकर सत्ताधारियों व पूँजीपतियों के प्रति चुभता हुआ व्यंग्य करता है। साठ के दशक में ऐसे कितने कवि होंगे जो सत्ता व संसद से प्रश्न करने का साहस करते हैं। संभवतः धूमिल इसलिए ही साठोत्तरी काव्य के महत्वपूर्ण कवि हैं। और आधुनिक हिन्दी कविता में यर्थाथ और व्यंग्य की परम्परा में धूमिल अपने वैशिष्ट्य के लिए सदा जाने जाते रहेंगे।

सन्दर्भ

वर्मा, धीरेन्द्र. (2015). *हिन्दी साहित्य कोश,* भाग 1. वाराणसी – 1, पृ.सं. 510.

बाहरी, हरदेव. (1994). *हिन्दी शब्द कोश, दिल्लीः* राजपाल एण्ड सन्ज, पृ.सं. 762.

सिंह, बच्चन. (2016). हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ सं. 451.

धूमिल (2014). *संसद से सड़क तक,* नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., पृ.सं. 12;39;89;100;101—102;104—105;109;119;127;128.